सुतली बनाम ज्यॉमेट्री बाक्स

पश्चिम में पैदा नहीं हुआ है विज्ञान

चंद्रकांत राजू, वरिष्ठ वैज्ञानिक

भारत का पहला सुपरकंप्यूटर परम को बनाने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाने वाले चंद्रकांत राजू देश के प्रमुख वैज्ञानिक हस्ताक्षर हैं। वे भारतीय दार्शनिक अनुसंधान परिषद् की जरनल के संपादक रह चुके हैं। भारतीय उच्च अध्ययन संस्थान, शिमला और नेहरू मेमोरियल म्यूजियम एंड लाइब्रेरी, नई दिल्ली इत्यादि के फेलो रह चुके हैं। उन्होंने कई विषयों पर किताबें लिखीं हैं: भौतिकी पर (टाइमः टुवार्ड्स ए कंसिस्टेंट थ्योरी, क्लूवर, 1994), गणित के इतिहास और दर्शन पर (कल्चरल फाउंडेशंस ऑफ मैथेमैटिक्स, पियरसन, 2007) और विज्ञान, धर्म और नैतिकता के इंटरफेस पर (द इलेवन पिक्चर्स ऑफ टाइम, सेज, 2003)। उनके अनुसार उपनिवेशवादी राजनीति के अनुकूल समय की अवधारणा धर्मशास्त्र से विज्ञान (गणित, भौतिक विज्ञान) में घुस गई हैं। उनका मानना है कि आज देश में विज्ञान और गणित के माध्यम से ईसाई मजहबी मान्यताएं स्थापित की जा रही हैं। उन्होंने गणित और विज्ञान के इतिहास की अनेक स्थापनाओं को चुनौती दी है। चंद्रकांत राजू से भारत में विज्ञान के शिक्षण और भविष्य के बारे में सह संपादक रवि शंकर ने लंबी बातचीत की। प्रस्तुत है उसके प्रमुख अंशः

गत जनवरी में आयोजित विज्ञान कांग्रेस के सम्मेलन एक सत्र भारतीय विमानशास्त्र और विज्ञान पर रखा गया था। इसका अनेक वैज्ञानिकों ने काफी विरोध किया था और कहा था कि इससे अंधविश्वास को बढ़ावा मिलेगा। आप क्या मानते हैं, क्या भारत मे ऐसा कोई प्राचीन विज्ञान रहा है या नहीं?

मैंने तो भारतीय विमानशास्त्र का अध्ययन नहीं किया है। परंतु विज्ञान का एक सरल नियम है जिसे पोप्पर ने कहा था रिफ्यूटेबिलिटी और इसका मैंने हिंन्दी में अनुवाद किया है खण्डनीयता। इसका अर्थ है कि किसी भी सिद्धांत का खण्डन कैसे किया जाए। इससे ही विज्ञान बनता है। मैं तो विज्ञान कांग्रेस में गया नहीं था। परंतु जहां तक मैंने पढ़ा है वहां ऐसी कोई खण्डन की बात रखी नहीं गई। दूसरी बात है कि हर प्रकार से परीक्षा किए जाने के बाद ही कोई बात विज्ञान के दायरे में आती है। प्रत्यक्ष प्रमाण होना चाहिए। विज्ञान में शब्द प्रमाण नहीं चलता है। कहीं कोई बात कही गई है, इतने भर से बात नहीं बनती है। उसका प्रत्यक्ष में प्रमाण दिखाना होगा। यदि कहीं भी कुछ वर्णन है, तो उसके आधार पर किसी ने विमान उड़ा कर दिखाया होता तो इससे कुछ बात बनती। और जो ग्रहों के बीच आने-जाने की बात है, वह बढ़ा-चढ़ा कर बोला जा रहा है। इस अतिशयोक्ति से काफी नुकसान होता है।

यह जो अतिशयोक्तिपूर्ण बातें कही जाती हैं, इससे सही बातें भी उपेक्षित हो जाती हैं। देखिए, मैंने ग्रीक विज्ञान के रचे गए आडम्बर का विरोध किया है तो उसी सिद्धांत पर मैं भारत के विज्ञान को भी जांचुंगा। सिद्धांत तो वही रहेगा। भारत में बहुत सारी विज्ञान की बातें रही हैं जिनका आज भी काफी उपयोग हो सकता है, परंतु ऐसी अतिशयोक्तियों से उनकी भी उपेक्षा कर दी जाती है। लोग इस प्रोपेगंडा में उलझ जाते हैं। और ग्रहों के बीच आवागमन के विरोध में भारत में आविष्कृत कैलकुलस भी उपेक्षित हो जाता है। इसलिए पर्याप्त प्रमाणों और परीक्षण के बाद ही कोई बात कही जानी चाहिए। विज्ञान में केवल ग्रंथ का प्रमाण नहीं माना जा सकता।

तो क्या मान लें कि भारत में विज्ञान की कोई परंपरा नहीं रही है? वैमानिकी आदि ग्रंथ बेकार के हैं?

नहीं, नहीं, मैं यह मानता हूँ कि प्राचीन भारत में बहुत कुछ था। उदाहरण के लिए हड़प्पा-मोहनजोदड़ो में देखिए, कितनी वैज्ञानिक नगर-योजना थी। बहुत सारी चीजें थीं। उनमें से जिन चीजों का परीक्षण कर लिया गया है और जिनका प्रमाण जुटा लिया गया है, उसकी बात की जानी चाहिए। जैसे कि पाई के मान की बात है, यह शुल्ब सूत्र में वर्णित है। डा. हर्षवर्धन ने शुल्ब सूत्र में पाइथागोरस प्रमेय के होने की बात कही। इस बात को थोड़ा बारीकी से समझने की आवश्यकता है। बौधायन , आपस्तम्ब और कात्यायन शुल्ब सूत्र में इसका उल्लेख है। यह भी मान सकते हैं कि इनका काल ईसाई कैलेंडर से -800 वर्ष । रहा होगा. मैं ईसा पूर्व नहीं बोलता हूँ कि क्योंकि ईसा । कोई ऐतिहासिक सत्य नहीं. पाइथागोरस -500 वर्ष में हुआ है। इस प्रकार हम तीन सौ वर्ष पहले से

यूक्लिड के होने का भी कोई प्रमाण उपलब्ध नहीं है। मैंने दो लाख रूपयों के ईनाम की घोषणा कर रखी है कि कोई भी यूक्लिड के होने का कोई ठोस सबूत दे दे तो मैं उसको यह ईनाम दूंगा। 3-4 वर्ष हो गए किसी ने कोई प्रमाण नहीं दिया। अब जिस बात का कोई प्रमाण नहीं है, उसे तो पाठ्यपुस्तकों से हटा देना चाहिए।

उसे जानते थे। परंतु इस बात को और आगे बढ़ाया जा सकता है। हम क्यों मानें पाइथागोरस को? उसका क्या प्रमाण है? सिद्धांत तो यही है न कि जिसका प्रमाण नहीं है वह मिथ्या है। तो फिर पाइथागोरस के होने का क्या प्रमाण है? वह भी एक मिथक है। उसके होने का कोई भी प्रमाण नहीं है।

यदि पाइथागोरस एक मिथक है तो इसकी रचना किसने और क्यों की?

इसके राजनीतिक कारण हैं। ग्रीक को आमतौर पर यूनानी कहा जाता है, परंतु वह सही नहीं है। ग्रीक के बारे में काफी कुछ बढ़ा-चढ़ा कर बोला और लिखा गया। यह किया गया मिश्र को दबाने के लिए। मिश्र में पिरामिड जो बने हैं, उसे कोई बिना पाइथागोरस प्रमेय को जाने बना सकता है क्या? इराक में हमें -1600 की क्ले-टैबलेट्स यानी कि शिलालेख मिलते हैं। उनमें बहुत साफ-साफ पाइथागोरस प्रमेय का वर्णन है। इन्हें हम कैसे नकार सकते हैं। तो हमें यह पूछना है कि पश्चिमी इतिहासकारों ने इन सभी प्रमाणों को क्यों छोड़ दिया? उन्होंने कहा कि पाइथागोरस के पास प्रमाण था, आपने केवल उसका अवलोकन किया था, उसका कोई प्रमाण नहीं दिया था। इसका कोई डिडक्शन नहीं था। डिडक्शन पाइथागोरस ने दिया और डिडक्शन से ही मैथेमेटिक्स बनता है। परंतु जब पाइथागोरस का ही कोई प्रमाण नहीं है तो हमें कैसे पता कि उसने कोई प्रमाण दिया? वह भी झूठ है।

जब वे यहां फंस जाते हैं तो वे कहते हैं कि यूक्लिड के पास प्रमाण था। अब यूक्लिड के होने का भी कोई प्रमाण उपलब्ध नहीं है। मैंने दो लाख रूपयों के ईनाम की घोषणा कर रखी है कि कोई भी यूक्लिड के होने का कोई ठोस सबूत

दे दे तो मैं उसको यह ईनाम देता हूँ। 3-4 वर्ष हो गए किसी ने कोई प्रमाण नहीं दिया। अब जिस बात का कोई प्रमाण नहीं है, उसे तो पाठ्यपुस्तकों से हटा देना चाहिए। अब देखने वाली बात यह है कि यूक्लिड की पुस्तक इलिमेंट में जो प्रमाण दिया गया है, वह भी डिडक्टिव प्रमाण नहीं है। उनका कहना रहा है कि भारतीय ग्रंथों में जो गणित है उसका डिडक्टिव प्रमाण नहीं है इसलिए वह मैथेमेटिक्स नहीं है। यह एक दार्शनिक झगड़ा है। भारतीय ग्रंथों में प्रत्यक्ष को ही पहला प्रमाण माना गया है और उसे ही दिया गया है। यहां प्रत्यक्ष को सबसे बड़ा प्रमाण माना गया है। परंतु दूसरी ओर इलिमेंट में भी तो डिडक्टिव प्रमाण नहीं है। यूक्लिड का पहला प्रमेय का केवल प्रत्यक्ष प्रमाण दिया गया है। चौथे का भी केवल प्रत्यक्ष प्रमाण है। बीसवीं सदी तक उसका कोई डिडक्टिव प्रमाण था ही नहीं। यह पूरी की पूरी बात झूठी है। इस तर्क से उनकी अपनी बात भी खारिज हो जाती है। हालांकि बीसवीं सदी में बर्ट्रेंड रसेल और हिलबर्ट आदि ने उसे बचाने की कोशिश की और कहा कि यूक्लिड ने गलती की थी। इसके लिए उन्होंने चौथे प्रमेय को सिद्धांत बना दिया। इसके लिए हिलबर्ट ने सिंथेटिक ज्यामिति बनाई। परंतु वह भी 35वें प्रमेय के आगे नहीं चलती। पाइथागोरस 47वां प्रमेय है। वह हिलबर्ट से भी प्रमाणित नहीं किया जा सकता।

वास्तव में डिडक्टिव प्रमाण देना इलिमेंट का उद्देश्य था ही नहीं। उसका उद्देश्य मिश्र की रहस्य-ज्यामिति से जुड़ा है। इसके माध्यम से हमारा ध्यान अंदर की ओर जाए। जैसे कि योग में होता है। योग की ही भांति वह ध्यान की ओर ले जाने की विधा थी। इसे जानबूझ कर डिडक्टिव तरीके की ओर ले जाया गया। ऐसा किया गया चर्च के कारण। इन बातों पर शोध किया जाना चाहिए। इतिहास की छोटी चीजों को भी स्थापित करने में खर्च होता है, इच्छा शक्ति की जरूरत होती है। केवल बोलने से नहीं होगा। उससे उसका मजाक बन जाता है। उतना शोध करने की तैयारी चाहिए। शोध करके ही बोलना जरूरी है।

आपने बताया कि उन्होंने मिथक रचे। मिथक रचने के लिए भी गणित और विज्ञान की जो जानकारी चाहिए थी, वह उनके पास कहां से आया? उस ज्ञान को उपलब्ध कराने में भारत का कितना योगदान था?

भारत का योगदान बहुत है। मेरा मानना है कि पाइथागोरस प्रमेय तो मिश्र से आया, लेकिन गणित का बहुत सारा ज्ञान भारत से ही गया है। जैसे कि बीजगणित ब्रह्मगुप्त ने विकसित किया। उस पर अल ख्वारिज्मी ने अल-जब्र-वल-मुकाबला नामक किताब लिखी। उससे ही अलजेबरा शब्द निकला। लेकिन मेरा मानना है कि हमें केवल इतना कह कर नहीं रूकना चाहिए। आज हमें उससे क्या लाभ है? उससे आज हम क्या कर सकते हैं?

उदाहरण के लिए शुल्ब सूत्र है। शुल्ब का अर्थ होता है सुतली, रस्सी। पहले ज्यामिती में धागे या रस्सी से ही काम किया जाता था। आज भी कम्पास बाक्स की तुलना में एक रस्सी से मैं गणित के सारे काम कर सकता हूँ। इससे रेखा खींची जा सकती है, वृत्त बनाए जा सकते हैं, कोण और चाप नापे जा सकते हैं, क्योंकि इससे वक्र रेखा भी नापी जा सकती है। वक्र रेखा कम्पास बाक्स से नहीं नापी जा सकती है। कम्पास बाक्स से केवल सीधी रेखाएं ही नापी जा सकती हैं। तो यदि शुल्ब सूत्र को मानते हैं तो कम्पास बाक्स से क्यों पढ़ाते हैं? शुल्ब या फिर सुतली या धागे से क्यों नहीं पढ़ाते? कम्पास बाक्स में एक डिवाइडर होता है, उसका कोई उपयोग नहीं होता। बच्चे उससे केवल छेद करने का काम करते हैं। कोई उसका कोई उपयोग नहीं करता। वह किसी और काम का था। हम पूरा कम्पास बाक्स हटा कर सूतली से पूरा ज्यामिति पढ़ा सकते हैं।

शुल्ब का अर्थ होता है सुतली या रस्सी। पहले ज्यामिती में धागे या रस्सी से ही काम किया जाता था। आज भी एक रस्सी से मैं गणित के सारे काम कर सकता हूँ। इससे वक्र रेखा भी नापी जा सकती है जो कम्पास बाक्स से नहीं नापी जा सकती है। कम्पास बाक्स से केवल सीधी रेखाएं ही नापी जा सकती हैं। यदि शुल्ब सूत्र को मानते हैं तो कम्पास बाक्स से क्यों पढ़ाते हैं? शुल्ब या फिर सुतली या धागे से क्यों नहीं पढ़ाते?

आपकी इस बात से मुझे ध्यान में आ रहा है कि आज भी राज मिस्त्री सुतली से ही नापने का सारा काम करते हैं।

बिल्कुल ठीक। कम्पास बाक्स को केवल कागज पर प्रयोग किया जा सकता है, जबकि सूतली कहीं भी प्रयोग में लाई जा सकती है। इसलिए हम अपने प्राचीन विज्ञान व्यावहारिक प्रयोग भी करें। दूसरी बात है शुल्ब सूत्र में पाई का मान निकालने के क्रम में दो शब्दों का प्रयोग किया गया है। एक स अनित्य, जिसका अर्थ है जो शाश्वत नहीं हो। दूसरा शब्द है स अवशेष जिसका अर्थ है अवशेष के साथ। गणित मैथेमेटिक्स से अलग है। गणित में हम अनित्यता भी स्वीकारते हैं

और अवशेष भी स्वीकारते हैं। पश्चिमी दर्शन में यह नहीं माना जाता। वहां माना जाता है कि यह इटरनल ट्रूथ और परफेक्ट यानी कि शाश्वत और पूर्ण है। इटरनल ट्रूथ की बात तो मजहबी है, हमें कैसे पता चलेगा कि कौन सी चीज शाश्वत है। हम शाश्वत नहीं हैं, हमारे पूर्वज शाश्वत नहीं हैं तो हमें कैसे पता चल सकता है कि कौन सी चीज शाश्वत है। यह दार्शनिक नहीं, मजहबीबात है। दर्शन में भी तर्क चलते हैं। वहां भी कोई चीज शाश्वत नहीं मानी जाती। शाश्वतता की बात केवल संप्रदायों में चलती है। इसे उन्होंने गणित से जोड़ दिया, विज्ञान से जोड़ दिया। इस षड्यंत्र को समझना जरूरी है।

बीजगणित के अलावा भारत की देन और क्या है?

आज जो अंकगणित है, वह भारत से गया है। अंकगणित भी बगदाद हो कर यूरोप पहुंचा। सबसे पहले दसवीं शताब्दी में पोप सिल्वेस्टर ने अंकगणित के बारे में जाना, पर वे इसे समझ नहीं पाये। यह बात काफी महत्वपूर्ण है। यहां से एक बात वहां जाती है और वहां लोग उसे समझ ही नहीं पाते हैं। उन्होंने एक एबैकस बना दिया। रोमन अंक एबैकस से जुड़े हुए हैं। अगर हमें किसी चीज को जोड़ना हो तो सिक्कों का प्रयोग किया जाता था। वह काफी कठिन था। घटाना तो और भी कठिन था। 39 को 73 से गुणा करना हो तो यह और भी कठिन था। इस कठिनाई को दूर करने के लिए ही सिल्वेस्टर ने भारतीय अंकगणित को मंगाया था, परंतु उन्हें यह समझ नहीं आया था। बाद में फ्लोरेंस के व्यापारियों ने पाया कि अरब लोग तेजी से गुणा-भाग कर लेते हैं और बता देते हैं। उससे उन्होंने इसे सीखा। इसे वे एलगोरिस्मस कहते थे। क्योंकि अल ख्वारिज्मी के हिसाब अल हिन्द से सीखा. इसी से एलगोरिज्म बना है।

एक और बात हम कहते हैं कि हमारे यहां शून्य का आविष्कार हुआ। आविष्कार हुआ या नहीं, इस पचड़े में अगर हम न भी पड़ें, तो महत्वपूर्ण बात यह है कि यूरोपियन शून्य को समझ नहीं पाए। उनके यहां जोड़ की प्रणाली था। उदाहरण के लिए 12 को उनके यहां XII यानी कि 10+1+1 के रूप में समझा जाता था, जबकि हमारे यहां स्थान-मूल्य प्रणाली थी। हमारे यहां 12 का अर्थ 1+2 नहीं है। वे इसे समझ नहीं पाए। जैसे 10 का अर्थ उन्हें 1+0 = 1 लगता था जोकि ऐसा है नहीं। उन्हें लगा कि शून्य का अपना मूल्य तो कुछ भी नहीं है, फिर इससे किसी का मूल्य कैसे बढ़ या घट जाता है। इससे वहां काफी विवाद होने लगा। गड़बड़ यह होने लगा कि किसी ने 120 रूपयों में समान दिया और कागज में लिखते समय उसमें दो शून्य और लगा दिए। इसलिए फ्लोरेंस में तेरहवीं शताब्दी में कानून बनाया गया कि जब भी अरबी अंकों को लिखा जाएगा तो उसके साथ उसे शब्दों में भी लिखना आवश्यक होगा। वही चीज आज भी लागू है। वर्तमान अंकगणित तो सोलहवीं शताब्दी में 1572 के आसपास उनके पाठ्यक्रम में जुड़ा। इसी प्रकार बीजगणित वहां गया। बाद में आर्यभट का पाई का मान गया। त्रिकोणमिति गई।

एक सवाल यह है कि यदि यह सब कुछ उन्होंने हमसे सीखा तो आज विज्ञान और तकनीक में वे हमसे इतना आगे क्यों हैं और हम कैसे पिछड़ गए? आज हम उनकी नकल करने पर क्यों विवश हैं?

मैकाले ने कहा कि वे हमसे विज्ञान में काफी आगे हैं। हमने मान लिया। क्यों माना? किसी ने उनके इतिहास को आज तक जांचा ही नहीं है। बिना जांचे आज तक पाइथागोरस को मानते हैं। हमें हर चीज का प्रमाण चाहिए। उसकी जांच करनी चाहिए। हमने बिना जांचे अपनी पूरी शिक्षा व्यवस्था बदल डाली।

यह हुआ विज्ञान का मिथ्या इतिहास पढ़ाए जाने से। उस मिथ्या इतिहास को स्वीकार किए जाने से। एक बात तो यह है कि तथ्यों और इतिवृत्तात्मक इतिहास लेखन में उन्हें महारत हासिल है। उनका एक सामूहिक तंत्र है। कोपरनिकस से लेकर न्यूटन तक जिसने भी काम किया, उसे उन्होंने एक साथ एक क्रम में रखा। अपने यहां ऐसा कोई केंद्रीकृत व्यवस्था नहीं थी। कभी किसी राजा ने सहयोग किया तो उसके समय कुछ काम हुआ और किसी ने सहयोग नहीं दिया तो काम रूक गया। फिर कौन क्या कर रहा है, किसी को पता नहीं। केरल में क्या हो रहा है, यह उत्तर के लोगों को पता नहीं। ब्रिटिश लोगों ने पूरे देश में घूम कर सबका संकलन किया। अनुसंधान होते थे और वे सभी जगह पहुंचते भी थे। आर्यभट के शिष्य केरल में भी थे, परंतु चर्च की भांति एक केंद्रीकृत व्यवस्था नहीं थी।

दूसरी बात, हमने उनकी शिक्षा व्यवस्था ले ली। हमने अपनी शिक्षा-व्यवस्था बदल डाली मैकाले के कहने से। मैकाले ने कहा कि वे हमसे विज्ञान में काफी आगे हैं। हमने मान लिया। क्यों माना? किसी ने कुछ कहा है तो इन दो सौ सालों में एक बार तो जांचना था। किसी ने उनके इतिहास को आज तक जांचा ही नहीं है। आज तक पाइथागोरस को मानते हैं। यूक्लिड को मानते हैं। यह गलत है न। हमें हर चीज का प्रमाण चाहिए। उसकी जांच करनी चाहिए। हमने बिना जांचे अपनी पूरी शिक्षा व्यवस्था बदल डाली। उनकी शिक्षा प्रणाली हमें क्या सिखाती है? बड़े शर्म की बात है कि कुछ दिनों पहले मैंने दिल्ली विश्वविद्यालय में छात्रों से पूछा कि 2+2 चार क्यों होता है, उन्हें नहीं पता था। बनारस हिंदू विश्वविद्यालय में भी छात्र नहीं बता सके। वे इम्पीरिकल (प्रत्यक्ष) चीज बोलते हैं। परंतु मैथ तो नॉनइम्पीरिकल है, डिडक्टिव

है। यह आपको सिखाया नहीं जाता है।

इस पूरी शिक्षा का उद्देश्य आपको विज्ञान और गणित के मामले में अशिक्षित रखना है। हम दो सौ सालों से इसे अपनाए हुए हैं, आगे बढ़ने के लिए न। फिर हम आगे क्यों नहीं बढ़ पाए? और हमने यह कैसे विश्वास कर लिया कि चर्च आकर हमें कुछ विज्ञान सिखा देगा जिससे हम तरक्की कर जाएं और वे पीछे रह जाएं। हैरत की बात है कि इतने बड़े देश में किसी ने भी इसे जांचने की कोशिश नहीं की। विज्ञान में भी हम क्या पढ़ते हैं? केवल उनकी नकल करते हैं। यदि हम आज आइंसटाइन पर कोई सवाल खड़े करें, तो कहा जाएगा कि वहां से प्रमाणपत्र लेकर आओ। क्यों? विज्ञान क्या प्रमाणपत्र से चलेगा। आप जांचें और बताएं। उनकी शिक्षा व्यवस्था वास्तव में चर्च की शिक्षा व्यवस्था है और यह बनाई गई मिशनरी बनाने के लिए। चर्च के विश्वविद्यालय क्रुसेड के जमाने में शुरू हुए। जब वे सैन्य विजय करने में असफल रहे, तब उन्होंने उनके ज्ञान को सीख कर अपना मिशनरी बनाना शुरू किया। मिशनरी को अंधविश्वासी होना चाहिए। इसलिए इस व्यवस्था में कॉमन सेंस का कोई महत्व नहीं है। स्कूल की बातों को डंडा मार कर सिखाया जाता है। बारह साल तक वे आपको एक बात सिखाते हैं। चाहे वह गलत हो, चाहे वह आपको समझ में आए या न आए। यही व्यवस्था है। ऐसा नहीं है कि इसमें कोई गलती रह जाने से ऐसा हुआ है। यह व्यवस्था ऐसी ही बनाई गई है। उसे सिखा-सिखा कर ऐसा बना दो कि उसे लगे कि पश्चिम कहता है, वही सही है, यहां की सभी बातें गलत है। इसलिए ये सभी वही कर रहे हैं।

इसे कैसे बदला जा सकता है? शिक्षा व्यवस्था पर सवाल तो सभी खड़े करते हैं, परंतु समाधान क्या है?

समाधान के लिए दो बातें करें। पहली बात है कि विज्ञान के इतिहास की परीक्षा करें। हमारे यहां जो प्रमाण चलते थे, उसे समझें। उनसे प्रमाण मांगें। उनके मिथकों की जांच करें। इस बात पर जोर दिया जाए कि हमारी पाठ्य पुस्तकों में केवल प्रामाणिक बातें ही पढ़ाई जाएं, चाहे वे पाश्चात्य हों या हमारी। इससे बड़ा फायदा यह होगा कि हमारे पास तो बताने के लिए बहुत कुछ है, उनके पास कुछ भी नहीं है। इससे विज्ञान का इतिहास ठीक हो जाएगा। विज्ञान का इतिहास ठीक होगा तो उसे पढ़ाने का तरीका भी ठीक किया जा सकेगा।

क्या विज्ञान की पढ़ाई को संस्कृत से जोड़ने से कुछ लाभ हो सकता है?

नहीं, संस्कृत तो नहीं, हां संस्कृति को अगर जोड़ लें तो काफी लाभ हो सकता है। शिक्षा को उपनिवेशवाद से मुक्त करने का पहला कदम यह है कि हम इतिहास, दर्शन और विज्ञान की समीक्षा करें। सबकी जांच करें। झूठे इतिहास, दर्शन और विज्ञान से ही हमें उपनिवेश बनाया गया। हमारा पूरा शिक्षा तंत्र बदला गया। इसे पलटना ही शिक्षा को उपनिवेशवाद की चंगूल से बाहर निकालने का पहला कदम होगा। उदाहरण के लिए गणित में प्रत्यक्ष प्रमाण को वे नहीं मानते, जबकि विज्ञान में तो प्रत्यक्ष प्रमाण ही चलते हैं। तो हमें अपनी प्राचीन पद्धति के अनुसार गणित में प्रत्यक्ष प्रमाण को पढ़ाना चाहिए। इससे गणित सरल हो जाता है और विज्ञान भी बदल जाता है।

उन्होंने विज्ञान में अपने ईसाई सिद्धांत घुसा दिए हैं, उन्हें निकालना होगा। आज के विज्ञान में यह सैद्धांतिक समस्या है। इसका जो व्यवहार पक्ष है वह वही है जो प्राचीन भारत का विज्ञान है। परंतु उन्होंने शिक्षा का मजहब और व्यवहार का जो कॉकटेल बनाया है, इसे ठीक करने की आवश्यकता है।

शिक्षा को उपनिवेशवाद से मुक्त करने का दूसरा कदम क्या होगा?

दूसरा कदम यह होगा कि उन्होंने हमारे विज्ञान में जो गड़बड़ी करके हमें वापस किया है, उसे दूर करना होगा। उन्होंने विज्ञान में अपने ईसाई सिद्धांत घुसा दिए हैं, उन्हें निकालना होगा। उदाहरण के लिए न्यूटन लॉ हैं। किसी ने भी विचार नहीं किया कि न्यूटन के सिद्धांतों को लॉ क्यों कहते हैं? हिंदी में आप जो कहें, परंतु अंग्रेजी में उन्हें लॉ कहते हैं। लॉ यानी कानून। न्यूटन के सिद्धांत कानून कैसे हो गया? यह ऐसे हो गया कि यह उनकी मजहबी विश्वास है कि गॉड दुनिया पर प्रकृति के कानूनों से शासन करता है। वह उससे परे नहीं जा सकता। इस्लाम में है कि गॉड नियमों के परे भी कुछ कर सकता है, हमारे यहां है कि व्यक्ति भी कुछ कर सकता है। हम ईश्वर की प्रतीक्षा नहीं करते। परंतु ईसाइयत की अवधारणा है कि नियम बन चुके हैं, उसमें कोई तब्दिली संभव नहीं है। इसे ही विज्ञान में घुसा दिया गया है। न्यूटन ने सोचा कि ईश्वर ने अपना कानून उस पर प्रकट किया है। इसलिए उसने अपने सिद्धांतो को हाइपोथिसिस की बजाय लॉ कहा। वह स्वयं को पैगंबर मानता था। न्यूटन क जन्म 25 दिसंबर को हुआ था। गलत कैलेंडर के कारण उसका जन्म 25 दिसंबर को माना जाता है। उसके समय तक ग्रिगोरियन कैलेंडर में परिवर्तन हो गया था परंतु उस समय तक इंग्लैंड में वे परिवर्तन स्वीकार नहीं किए गए थे।

आप जिन परिवर्तनों की बात कर रहे हैं, वे निचले स्तर से शुरू किए जाएं या फिर विश्वविद्यालय के स्तर से?

विश्वविद्यालय के स्तर पर इसे साबित करना आसान है। मेरा सुझाव था कि विश्वविद्यालय के स्तर पर पहले बदला जाए। बच्चों के बारे में लोग थोड़ा अतिरिक्त सावधान रहते हैं कि बाद में उसे कोई कठिनाई न हो। विश्वविद्यालय के स्तर पर परिवर्तन करना आसान है और वहां बदल होने से नीचे भी बदल जाएगा। वहां प्रयोग करना भी सरल है। शिक्षा को सेकुलर बनाना जरूरी है। शिक्षा में से इन मजहबी बातों को निकालना आवश्यक है। आज के विज्ञान में यह सैद्धांतिक समस्या है। इसका जो व्यवहार पक्ष है वह वही है जो प्राचीन भारत का विज्ञान है। उपग्रह भेजने के लिए नासा वही डिफेंशियल समीकरण प्रयोग करता है जो अपने यहां से वहां गया है। परंतु उसके लिए हमें क्रिश्चियन थियोलोजी को पढ़ने-पढ़ाने की कोई आवश्यकता नहीं है। उन्होंने शिक्षा का मजहब और व्यवहार का जो कॉकटेल बनाया है, इसे ठीक करने की आवश्यकता है।